शैक्षिक समाधान

पी.एस. नारायण

पी.एस. नारायण विप्रो के साथ काम करते हैं और सस्टेनेबल इनिशिएटिव टीम के सदस्य हैं। उन्होंने एक बाज़ारोन्मुखी समाज में इकॉलॉजिकल चेतना की प्रकृति को लेकर विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किए।

वेणु

यह कुछ व्यापकतर सवालों को सामने लाने का एक प्रयास है कि पर्यावरण के संदर्भ में शिक्षा में क्या किया जा सकता है और क्या नहीं किया जाना चाहिए। यह नारायण और आलोक का एक संयुक्त प्रस्तुतीकरण होगा। उन्होंने मुझे बताया है कि उनके प्रस्तुतीकरण में चर्चा का समय ज़्यादा होगा।

नारायण

मेरा काम काफी आसान है। मेरा पहला काम यह है कि मैं आपको उकसाऊं, और पिछले डेढ़ दिन में जो कुछ हुआ है उसके आधार पर मुझे नहीं लगता कि यह कोई मुश्किल काम होगा। लिहाज़ा मैं करूंगा यह कि उन सारे मुद्दों के इर्द-गिर्द कुछ सवाल बुनूंगा जिनकी बातें हम यहां इस मंच पर करते रहे हैं। मेरा ख्याल है कि यहां अब तक जो सवाल पूछे गए हैं उनके जवाब या समाधान बहु-आयामी हैं, अलग-अलग परिप्रेक्ष्य से आते हैं, और आसान नहीं हैं, उनमें कई उप-उत्तर होते हैं, विपरीत मत होते हैं।

पहले मैं यह बता दूं कि मैं जो कुछ करता हूं, उसका इससे क्या लेना-देना है। मैं सस्टेनेबिलिटी टीम के तहत इको-आई नामक प्रोजेक्ट का सदस्य हूं, और इस पर काम करते हुए मुझे तकरीबन दो साल हो गए हैं। यह मेरी इकॉलॉजिकल चेतना के विकास की यात्रा रही है, और इसके साथ ही कई हैरतअंगेज़ बातें मेरे सामने आई हैं। शायद थोड़ी देर से आई हैं। मैं आपका ध्यान एक बात की ओर दिलाना चाहूंगा जो यहां उठी थी कि स्कूलों में और बच्चों में जागरूकता महत्वपूर्ण है, शायद वयस्कों में जागरूकता व चेतना उतनी ही या उससे भी ज़्यादा ज़रूरी है।

तो मैं आपके सामने कुछ संरचनाएं प्रस्तुत करूंगा। ये संरचनाएं मेरी अपनी नहीं हैं। मैं तो कुछ ऐसे लोगों की बातें प्रस्तुत करूंगा जिन्होंने इसके बारे में सोचा है और जो लोग न सिर्फ इकॉलॉजी के विषय में बल्कि अन्य सम्बंधित क्षेत्रों में भी प्रभावशाली हैं।

थोड़ा पहले की बातें याद करें, तो पहली बात तो हम यह करते रहे हैं कि मान्यता-पुंज (paradigms), जिस ढंग से हम सोचते हैं, कामकाजी आस्थाएं, कामकाजी मूल्य जिन्हें हम मानते हैं, ये एक खास ढंग से अंगीकार किए जाते हैं, और इन्हें बदलना सबसे मुश्किल काम होगा। मैं जो कुछ कहूंगा, उसका कुछ हिस्सा डेनियल गोलमैन से है। 'इकॉलॉजिकल इंटेलिजेन्स' पर गोलमैन का काम जाना-माना है।

हम सब सहस्त्राब्दियों पुराने अज्ञान साझा करते हैं। ये उसी तरह विकसित हुए हैं, जैसे मस्तिष्क का विकास हुआ है; इनका विकास हमारी मंशा के अनुसार नहीं हुआ है। उदाहरण के लिए, शेर का गुर्राता चेहरा या हम पर फेंकी गई कोई वस्तु या कोई तीर या रेलगाड़ी, इन्हें हम खतरे के रूप में पहचानते हैं। मगर गर्माती धरती उसी तरह खतरे का संकेत नहीं है। तो, जैव विकास के नज़रिए से देखें तो क्या यह आसान होगा कि हम यह पहचान पाएं कि जो कुछ हम कर रहे हैं, वह खतरनाक परिवर्तन है? यह पहला मुद्दा है।

दूसरा है, 'महत्वपूर्ण झूठ और सरल सच' की अवधारणा। यह भी गोलमैन से है, इसका मतलब है कि हम सरल सच को छिपाने के लिए महत्वपूर्ण झूठ बोल सकते हैं। महत्वपूर्ण झूठ कम से कम हमें अपराधी महसूस किए बगैर जीवन जीने में कुछ हद तक मदद करते हैं। 'मैं कम पानी से नहाता हूं', यह कहकर मैं महसूस करता हूं कि मैं एक अच्छा काम कर रहा हूं। मगर वास्तव में यह एक महत्वपूर्ण झूठ है जो हम, चेतन या अचेतन, खुद से बोलते हैं, क्योंकि यह इस सरल से तथ्य को छिपा लेता है कि चाहे हम सब ऐसा करें, तो भी इसका कोई खास असर नहीं होने वाला है। मैं यह कहने की कोशिश कर रहा हूं कि कुछ अज्ञान बिंदु हैं जो विकसित हो गए हैं और उन्हें हटाना आसान नहीं होगा। दूसरा कि जाने-अनजाने हम महत्वपूर्ण झूठ बोलते हैं ताकि हम चलते रहें और कुछ सरल सच छिपे रहें।

मैं चार स्वर पेश करूंगा। यह वाला जॉन केनेथ गालब्रैथ से है। 1958 की बात है। उन्होंने 'How much should a country consume?' (किसी देश को कितना उपभोग करना चाहिए) लिखा था जिसमें इस बात पर बात की गई थी कि उपभोग में वृद्धि जायज़ है अथवा इसे जायज़ माना जाता है। "अमेरिका व युरोप के लोगों को अधिकांशतः पर्याप्त आवास, कपड़े व भोजन उपलब्ध रहे हैं; अब वे ज़्यादा नफीस कारों, ज़्यादा लजीज़ भोजन, ज़्यादा परिष्कृत वस्त्रों, ज़्यादा तामझाम वाले मनोरंजन की इच्छा व्यक्त करते हैं।' अर्थात वे 'आगे क्या?' की अगली पायदान - ज़्यादा परिष्कृत भोजन, वस्त्र, मनोरंजन वगैरह - पर पहुंचे गए हैं। इन्हें उस समाज में जायज़ माना जाता है, जिसे गालब्रैथ ग्रेट गॉड ग्रोथ (GGG यानी वृद्धि महादेव) की विचारधारा कहते हैं। 'इसमें गलत क्या है?' यह सवाल स्वाभाविक रूप से किसी भी उपभोक्ता के मन में आएगा। और यही सवाल हममें से कई लोग पूछते हैं और इसी धारणा के तहत हममें से कई लोग जी रहे हैं।

दूसरा स्वर एक बार फिर डेनियल गोलमैन का है। वे 'ध्यान देने के नियम और अनदेखा करने के नियम' का एक बहुत ही दिलचस्प ढांचा प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि हम सब चुन-चुनकर ध्यान देने के दो नियमों का उपयोग करते हैं। पहला नियम इस बारे में है कि हम किस चीज़ को देखते हैं। जैसे टी-शर्ट जैसा कोई उत्पाद लीजिए। टी-शर्ट के बारे में हम उसकी कीमत और उसके गुणधर्मों पर ध्यान देते हैं। उदाहरण के लिए एक शीतल टी-शर्ट, 100 रुपए में। हम इसे बढ़िया सौदा कहते हैं। यह ध्यान देने का नियम है। चुनिंदा अज्ञान के नियम का सम्बंध उन चीज़ों से है जिन्हें हम नहीं देखते या जानबूझकर अनदेखा करते हैं। इस मामले में किसी वस्तु की छिपी हुई लागत कहीं ज़्यादा है क्योंकि इसे बनाने में 10,000 लीटर पानी खर्च हुआ है। टी-शर्ट की उत्पादन प्रक्रिया ने शायद भूजल स्तर को कम किया होगा। या हो सकता है इसमें बाल श्रम लगा हो। हम खुद को यह कह सकते हैं, 'मतलब तो कीमत का है, बाकी सब से क्या मतलब?' यदि हम वस्तुओं के बारे में सोचें, टी-शर्ट या मकान या कार या कुछ और, तो कुल मिलाकर यह एक बाज़ार समाज है। वहां चुन-चुनकर देखने और चुन-चुनकर अनदेखा करने के ये नियम लागू होते हैं। एक बार फिर, लोगों को इसमें कुछ भी गलत नहीं लगता, अक्सर इसलिए

कि वे अपनी चुनाव को देखते नहीं।

अगला उद्धरण डेविड ओर से है और यह शिक्षा के बारे में है। ओर पर्यावरण विज्ञान के प्रोफेसर हैं। वे कहते हैं, 'उच्च शिक्षा का मिथक...' और यह खास तौर से पर्यावरण पर लागू होता है, '...यह है कि हमने जिस चीज़ के पुर्जे-पुर्जे किए हैं, उसे पर्याप्त बहाल कर सकते हैं।' वे आगे कहते हैं, '...आधुनिक पाठ्यक्रम में हमने दुनिया को विषय और उप-विषय नामक टुकड़ों में विकंडित कर दिया है। नतीजतन, अधिकांश छात्र 12 या 16 या 20 साल की शिक्षा वस्तुओं की अखंडता के एकीकृत एहसास के बगैर ही पूरी कर लेते हैं। इसके परिणाम उनके व्यक्तित्व और पूरी धरती को भुगतने होते हैं। उदाहरण के लिए, हम ऐसे अर्थशास्त्री पैदा करते हैं, जिन्हें इकॉलॉजी का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं होता। हम एक बोरी गेहूं की कीमत तो जीडीपी में जोड़ देते हैं मगर तीन बोरी टॉपसॉइल की कीमत को घटाना भूल जाते हैं। अधूरी शिक्षा के परिणामस्वरूप हमने अपने आपको बहला लिया है कि हम वास्तव में जितने हैं, उससे कहीं अधिक समृद्ध हैं।'

और अंत में, इसका एक बहुत ही सुसंगत उदाहरण मशहूर नेत्र चिकित्सक से जीव वैज्ञानिक बने ई.ओ. विल्सन से लिया जा सकता है। दी फ्यूचर ऑफ लाइफ (2002) में वे विश्व दृष्टि के तीन परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करते हैं: अर्थशास्त्री का, इकॉलॉजीविद् का, और इंजीनियर का। एक अर्थशास्त्री पूरी समस्या को कुछ इस तरह देखता है - 'मानव बुद्धि और चतुराई ने धरती को समृद्धि के एक बगीचे में तबदील कर दिया है...कोई कारण नहीं कि ऐसा जारी क्यों नहीं रहेगा। पर्यावरणीय सरोकार मानव प्रगति का मलबा है...जिसे टेक्नॉलॉजी और बाज़ार की क्रियाविधि द्वारा बुहारने की ज़रूरत है।' पर्यावरणीय चिंताएं हैं तो ज़रूर, मगर हम उन्हें संभाल सकते हैं।

और यह रहा इकॉलॉजीविद् का नज़रिया - 'असीमित विकास सिर्फ एक असीमित ग्रह पर संभव है; धरती की क्षमता काफी पहले ही पीछे छूट चुकी है (1972)...मेहरबानी करके धीमे चलिए। जीडीपी और कार्पोरेट रिपोर्टें जितना बताती हैं, उससे ज़्यादा छिपाती हैं; कृपया लोगों और इकॉलॉजी द्वारा वहन की गई छिपी हुई लागतों को हिसाब में लाइए...हर रिपोर्ट कर्ज़ में दबी नज़र आएगी।'

इंजीनियर कहता है - 'समय और संसाधन मिलें, तो टेक्नॉलॉजी में नवाचार किसी भी समस्या को हल कर सकता है, उदाहरण के लिए हरित क्रांति। धैर्य रखिए...हम समाधान निकाल लाएंगे।' तो ये तीन अलग-अलग नज़रिए थे इस पूरे मुद्दे को देखने के।

यदि हम इस सबको जोड़ दें, तो मन में सवाल यह उठता है - क्या इकॉलॉजिकल चेतना सीखी या सिखाई जा सकती है? हमें यह सवाल भी पूछना चाहिए कि शिक्षा किस तरह से इन कठिन मुद्दों को संबोधित कर सकती है। मानव मस्तिष्क की संरचना इकॉलॉजी के नज़रिए से सोचने के लिए नहीं बनी है, वह जगह या भूगोल के संदर्भ में सारे कार्य-कारण सम्बंधों की कड़ियां जोड़ने या उनकी कल्पना करने में असमर्थ है। बात यह नहीं है कि हम ऐसा करना नहीं चाहते; हमारा विकास ही इस तरह हुआ है।

इसके अलावा, हम उपभोग, विकास और नौकरियों के आर्थिक मॉडल बनाम 'सीमित उपभोग' के इकॉलॉजिकल मॉडल के बीच निहित अंतर्विरोध को कैसे संबोधित करेंगे? इसके अंतर्गत एक सह-प्रश्न भी है - कार्यक्षम बाज़ार परिकल्पना (यानी Efficient Market Hypothesis - EMH) के गले में घंटी कौन बांधेगा? अर्थात हम यह कह रहे हैं कि बाज़ार के पास सारे जवाब हैं। एक ज़्यादा दार्शनिक सवाल यह होगा - हो सकता है *होमो सेपिएन्स* सबसे बुद्धिमान प्रजाति है मगर क्या इससे आपको इस ग्रह की नियति निर्धारित करने का अधिकार मिल जाता है? आप यह कैसे सिखाएंगे कि रफ्तार आपको धीमा कर सकती है। मानव सभ्यता की आत्म-विनाश की क्षमता को देखते हुए, लगता है कि यह शायद जैव विकास का चरम नहीं है। मुश्किल सवाल यह है कि एक ऐसे उद्देश्य और उपलब्धि के एहसास को कैसे वैधता प्रदान की जाए जो व्यक्तिगत, खासकर भौतिक उपलब्धि नहीं है।

सार रूप में मैं जो प्रमुख सवाल प्रस्तुत करना चाहता हूं उनका सम्बंध इस बात से हैं कि इकॉलॉजिकल चेतना

सीखने-सिखाने की समस्याएं उभरती हैं क्योंकि क) मुद्दा बहु-आयामी है; ख) यह बहुत अर्जेंट है; ग) यह मूलतः मानवीय परिस्थिति में से पैदा हुआ है। यह एक ऐसी चीज़ है जिसके संदर्भ में शायद हम लाचार हैं क्योंकि हमारा मस्तिष्क इसी तरह विकसित हुआ है, और इसलिए आप वह सब कुछ 200 वर्षों में मिटा नहीं सकते जो करोड़ों साल में तैयार हुआ है। हमारी चेतना को बदलने में सहस्त्राब्दियां लगेंगी। ये कुछ उकसाने वाले वक्तव्य हैं जो मैं आपकी चर्चा और बहस के लिए छोड़ रहा हूं।

सारांश

वक्ता ने कई सारे इकॉलॉजीविदों के तर्क प्रस्तुत किए जिन्होंने एक उपभोक्ता-उन्मुखी व बाज़ार-चालित समाज में इकॉलॉजिकल चेतना की प्रकृति सम्बंधी साहित्य में योगदान दिया है। डेनियल गोलमैन के 'महत्वपूर्ण झूठ व सरल सच' से लेकर जॉन गालब्रैथ के 'किसी देश को कितना उपभोग करना चाहिए?' तक वक्ता ने विचारकों के इस बाबत नज़रियों को रेखांकित करने का प्रयास किया कि आज अपने पर्यावरण को समझने में व्यक्ति कितना तंगदिमाग हो गया है। वक्ता ने विषय का समस्याकरण करते हुए कुछ सवाल सामने रखे - आप बाज़ार-चालित समाज में उच्च उपभोग को बदलकर इकॉलॉजी की दृष्टि से जागरूक समाज में सीमित उपभोग की ओर कैसे ले जाएंगे? धरती की नियति निर्धारित करने में मानव की भूमिका कितनी केंद्रीय है? वक्ता ने अपनी बात उन समस्याओं के साथ की जो इकॉलॉजिकल चेतना की समझ और शिक्षण का हिस्सा हैं।